चलन लागे, ठुमुकि ठुमुकि नँदलाल ।
ठड़े होत, पग द्वैक चलत पुनि, गिरि गिरि परत गोपाल ।
पुनि घुटुरुवनि गवनि तहँ पहुँचत, जहँ देहरी विशाल ।
कर-पद-उदर सबै छल-बल करि, लाँघन चह तत्काल ।
लाँघि न सकेउ, मचायेउ रोदन, दौरीं मातु बेहाल ।
बंक-भृकुटि जेहि प्रलय सोइ कर, लीला बाल रसाल ।
जनि रोवहिं मेरो लाल कालि हीं, देहरिहिं देहँ निकाल ।
इमि 'कृपालु' कहि हरि दुलरावति, दहरिहिं ताड़ति ताल ॥

भावार्थ-

(यशोदा जी की कामना के अनुसार श्रीकृष्ण थोड़ा-थोड़ा चलने लगे, उस समय की लीला क दृश्य) श्री कृष्ण ठुकुक-ठुमुक कर थोड़ा-थोड़ा चलने लगे, किन्तु अभी अधिक अभ्यास नहीं है, अतएव अपने-आप खड़े होकर दो -एक पग चलत हैं , फिर बार-बार गिर पड़ते हैं । बार-बार गिरने से थककर फिर घुटने के बल चलते हुये द्वार की बड़ी ऊँची देहरी के पास पहुँच जाते हैं । अपने हाथ, पेट एवं पैर सभी का बल लगाकर अनेक प्रकार से प्रयत्न करके, तत्क्षण ही उस ऊँची देहरी को लाँघना चाहा, किन्तु नहीं लाँघ सके । इसके परिणामस्वरूप खीझकर रोने लगे । रोने की आवाज सुनकर, प्रेम विह्वल होकर मैया ने श्री कृष्ण के पास दौड़ कर उनको उठा लिया । कवि कहता है कि जिसकी भृकुटि विलास से प्रलय हो जाता है, आज वही देहरी न लाँघ सकने की क्या ही मधुर बाललीला कर रहा है । मैया ने कहा, "मेरे लाल ! अब न रोवो, मैं कल ही देहरी को निकलवा दूँगी । **'कृपालु'** कहते हैं कि इस प्रकार कह कहकर यशोदा अपने लाला को गोद में झुलाती हुई अनेक प्रकार से दुलार करती हैं, एवं देहरी को हाथ की ताली बजाजकर मारने का बहाना करती हैं, ताकि अबोध श्री कृष्ण को शान्ति मिल जाय ।

© 2008 जगद्गुरु कृपालु परिशत्